

आगममें कर्मबन्धके कारण

समयसारमें बन्धके कारणोंका उल्लेख :

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो ।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥१०९॥
तेसि पुणोवि य इमो भणिदो भेदो दु तेरस वियप्पो ।
मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥११०॥

इन दो गाथाओंमें आचार्य कुन्दकुन्दने सामान्यतया मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग इन चारके रूपमें बन्धके कारणोंका उल्लेख किया है। तथा विस्तारसे मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्या-दृष्टि, अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मलोभ, उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवली इन तेरह गुणस्थानोंके रूपमें कथन किया है।

इसका आशय यह है कि मिथ्यात्वादि चार बन्धके साधकतम कारण हैं और मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थान बन्धके अवलम्बन कारण हैं। अर्थात् जीवोंके जो कर्मबन्ध होता है वह मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगके द्वारा होता है तथा वह तेरह गुणस्थानोंमें स्थित जीवोंमें यथायोग्य रूपमें होता है।

बन्धका मूलकारण योग

जीवमें कायवर्गणा, वचनवर्गणा और मनोवर्गणाके आधारपर जो हलन-चलन रूप क्रियाव्यापार होता है वह योग है। वह योग जीवकी क्रियावती शक्तिका परिणाम है और प्रथम गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तकके जीवोंमें प्रतिक्षण होता रहता है। वह एकेन्द्रिय जीवोंमें कायवर्गणाके अवलम्बनसे, द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके जीवोंमें कायवर्गणा और वचनवर्गणाके अवलम्बनसे तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंमें काय, वचन और मन इन तीनों वर्गणाओंके अवलम्बनसे पृथक्-पृथक् होता है।

योगका कार्य

लोकमें व्याप्त ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारकी कर्मवर्गणाओंका उक्त सभी योगोंके आधारपर आस्रव होकर वे कर्मवर्गणाएँ, जो जीवके साथ सम्बद्ध होती हैं उसे प्रकृतिबन्ध कहते हैं और प्रत्येक कर्म-वर्गणा जितने परिमाणमें जीवके साथ बद्ध होती है उसे प्रदेशबन्ध कहते हैं। इस तरह योगका कार्य प्रकृति-बन्ध और प्रदेशबन्ध निर्णीत है।

गुणस्थानोंमें योगोंकी विशेषता

आठों कर्मोंकी आगममें १४८ प्रकृतियाँ बतलायी गयी हैं। उनमेंसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन दोको छोड़कर शेष १४६ प्रकृतियाँ ही बन्धयोग्य मानी गयी हैं। इनमेंसे प्रथम, द्वितीय और तृतीय गुणस्थानोंमें योगकी प्रतिकूलताके कारण नामकर्मकी तीर्थंकर, आहारकशरीर, आहारकबन्धन, आहारकसंघात और आहारकांगोपांग इन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। फलतः प्रथम गुणस्थानमें १४१ प्रकृतियाँ ही बन्धयोग्य मानी गयी हैं।

मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धयोग्य उन १४१ प्रकृतियोंमेंसे द्वितीय गुणस्थानमें १२५ प्रकृतियाँ ही बन्ध योग्य हैं, क्योंकि मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय), नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी

और नरकायु इन सोलह प्रकृतियोंका बन्ध योगकी अनुकूलताके कारण प्रथम गुणस्थानमें ही सम्भव है, योगकी प्रतिकूलताके कारण द्वितीय आदि गुणस्थानोंमें सम्भव नहीं है ।

द्वितीय गुणस्थानमें बन्धयोग्य १२५ प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, स्त्यानगुद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक और बामनसंस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलितसंहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति, तिर्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु और उद्योत इन पच्चीस प्रकृतियोंका बन्ध योगकी प्रतिकूलताके कारण द्वितीय गुणस्थान तक ही सम्भव है, योगकी प्रतिकूलताके कारण तृतीय आदि गुणस्थानोंमें सम्भव नहीं है । तथा योगकी प्रतिकूलताके कारण आयुर्बन्ध न होनेसे मनुष्यायु और देवायुका भी बन्ध तृतीय गुणस्थानमें सम्भव नहीं है । अतः तृतीय गुणस्थानमें ९८ प्रकृतियोंका ही बन्ध सम्भव है ।

यतः तृतीय गुणस्थानमें बन्धयोग्य ९८ प्रकृतियोंका योगकी अनुकूलताके कारण चतुर्थ गुणस्थानमें भी बन्ध सम्भव है । तथा योगकी अनुकूलताके कारण तीर्थंकर प्रकृति, मनुष्यायु और देवायुका भी बन्ध चतुर्थ-गुणस्थानमें सम्भव है । अतः चतुर्थगुणस्थानमें १०१ प्रकृतियाँ बन्धयोग सिद्ध होती हैं ।

चतुर्थ गुणस्थानमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १०१ मानी गयीं हैं । इनमें अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ, वज्रर्धननाराचसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिकबन्धन, औदारिकसंघात और औदारिक-अङ्गोपांग तथा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु इन बारह १२ प्रकृतियोंका बन्ध योगकी अनु-कूलताके कारण चतुर्थ गुणस्थानतक ही सम्भव है, योगकी प्रतिकूलताके कारण पंचम आदि गुणस्थानोंमें संभव नहीं है । अतः पंचम गुणस्थानमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ ८९ सिद्ध होती हैं ।

पंचमगुणस्थानमें बन्धयोग्य इन ८९ प्रकृतियोंमेंसे योगकी प्रतिकूलताके कारण प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार प्रकृतियोंका षष्ठगुणस्थानमें बन्ध सम्भव नहीं है, अतः इस षष्ठगुणस्थानमें योगकी अनुकूलताके कारण ८५ प्रकृतियोंका ही बन्ध सम्भव है ।

षष्ठ गुणस्थानमें बन्धयोग्य पचासी ८५ प्रकृतियोंमेंसे अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक इन छह प्रकृतियोंका बन्ध योगकी प्रतिकूलताके कारण सप्तम गुणस्थानमें सम्भव नहीं है । साथ ही योगकी अनुकूलताके कारण आहारकशरीर, आहारबन्धन, आहारकसंघात और आहारकअंगोपांगका बन्ध सम्भव है, अतः सप्तम गुणस्थानमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ ८३ सिद्ध होती हैं ।

सप्तम गुणस्थानमें बन्धयोग्य ८३ प्रकृतियोंमेंसे योगकी प्रतिकूलताके कारण देवायुका बन्ध अष्टम गुणस्थानमें सम्भव नहीं है, अतः अष्टम गुणस्थानमें वियासी ८२ प्रकृतियोंका ही बन्ध सम्भव है ।

अष्टम गुणस्थानमें बन्धयोग्य इन वियासी ८२ प्रकृतियोंमेंसे योगकी प्रतिकूलताके कारण सर्वप्रथम निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंका बन्ध समाप्त होता है । इसके पश्चात् तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, तैजसबन्धन और तैजससंघात, कामणशरीर, कामणबन्धन और कामणसंघात, आहारकशरीर, आहारकबन्धन, आहारक संघात और आहारकअंगोपांग, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकबन्धन, वैक्रियिकसंघात और वैक्रियिक अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, स्पर्शनामकर्मके आठ भेद (हल्का, भारी, रुखा, चिकना, कोमल, कठोर, ठंडा, और गरम) रसनामकर्मके पाँच भेद (खट्टा, मोठा, कडुआ, कसायला और चरपरा), गंधनामकर्मके दो भेद (सुगन्ध और दुर्गन्ध) वर्णनामकर्मके पाँच भेद (काला, पीला, नीला, लाल और सफेद), अगल्लघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक-

शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय इन चौरा (५४) प्रकृतियोंका बन्ध समाप्त होता है और अन्तमें हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार (४) प्रकृतियोंका बन्धविच्छेद होता है। इस तरह नवम गुणस्थानमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ बाईस (२२) रह जाती हैं।

नवम गुणस्थानमें बन्धयोग्य बाईस (२२) प्रकृतियोंमेंसे योगकी प्रतिकूलताके कारण क्रमसे पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध समाप्त हो जानेसे दशम गुणस्थानमें योगकी अनुकूलताके कारण बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १७ सिद्ध होती हैं।

दशम गुणस्थानमें बन्धयोग्य १७ प्रकृतियोंमेंसे योगकी प्रतिकूलताके कारण ज्ञानावरणकर्मकी ५ दर्शनावरण कर्मकी ४, अन्तरायकर्मकी ५ तथा उच्चगोत्र और यशःकीर्ति इन १६ प्रकृतियोंका बन्धाभाव होनेपर ११वें गुणस्थान उपशान्तमोह, १२वें गुणस्थान क्षीणमोह और १३वें गुणस्थान सयोगकेवलीमें योगकी अनुकूलताके कारण एक मात्र सातावेदनीय प्रकृतिका बन्ध होता है। तथा १४वें गुणस्थानमें योगका सर्वथा अभाव हो जानेके कारण कर्मबन्धका सर्वथा अभाव ही है।

इस विवेचनका आशय यह है कि जिस प्रकार चुम्बक पत्थरमें विद्यमान आकर्षणशक्तिके आधारपर आकृष्ट होकर लोहेकी सुई चुम्बक पत्थरके साथ सम्बद्ध हो जाती है उसी प्रकार जीवमें विद्यमान योगकी अनुकूलताके आधारपर कर्मप्रकृतियोंका आस्रव होकर वे कर्मप्रकृतियाँ जीवके साथ बन्धको प्राप्त होती हैं।

योगकी अनुकूलता और प्रतिकूलताका आधार :

कर्मप्रकृतियोंके बन्धमें योगकी अनुकूलताको जो कारण माना गया है उसका आधार मोहनीयकर्मके उदयके साथ अन्य कारणसामग्री है। और उनके बन्धाभावमें योगकी प्रतिकूलताको जो कारण माना गया है उसका आधार मोहनीयकर्मके उपशम, क्षयोपशम या क्षयके साथ अन्य कारणसामग्री है।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड और इस लेखका समन्वय

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इस लेखमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १४६ कही गयी हैं, जबकि गोम्मटसार कर्मकाण्डमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १२० बतलाई गयी हैं। इन दोनों कथनोंका समन्वय इसप्रकार करना चाहिए कि गोम्मटसार कर्मकाण्डमें जो १२० प्रकृतियाँ बन्धयोग्य बतलाई हैं उनमें बन्धकी समानताके कारण ८ स्पर्शोंको स्पर्शसामान्यमें, ५ रसोंको रससामान्यमें, २ गंधोंको गन्धसामान्यमें और ५ वर्णोंको वर्णसामान्यमें अन्तर्भूत कर लिया गया है। तथा एक साथ बन्ध होनेके कारण औदारिकशरीरमें औदारिकबन्धन और औदारिक संघातको, वैक्रियिकशरीरमें वैक्रियिकबन्धन और वैक्रियिकसंघातको, आहारकशरीरमें आहारकबन्धन और आहारकसंघातको, तैजसशरीरमें तैजसबन्धन और तैजससंघातको तथा कार्मणशरीरमें कार्मणबन्धन और कार्मणसंघातको समाहित कर लिया गया है। इसलिये बद्धमान प्रकृतियाँ वास्तवमें १४६ होनेपर भी गोम्मटसार कर्मकाण्डमें उक्त प्रकार अभेदसे (अभेद विवक्षासे) १२० कही गयी हैं। फलतः वास्तविकताके आधारपर इस लेखमें बन्धयोग्य प्रकृतियोंकी संख्या १४६ बतलाना गोम्मटसार कर्मकाण्डके कथनके विरुद्ध नहीं है। इसीप्रकार प्रकृतियोंके बन्धनके समान अबन्ध और बन्धव्युच्छित्ति की व्यवस्थामें गोम्मटसार कर्मकाण्डके कथनके साथ इस लेखमें पाये जानेवाले संख्याभेदका भी समन्वय कर लेना चाहिए।

यह भी यहाँ ज्ञातव्य है कि यद्यपि जीव मिथ्यात्वकर्मके उदयमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्ती कहा गया है और मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धयोग्य १४१ प्रकृतियोंमें १६ प्रकृतियाँ ऐसी हैं, जिनका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है, अन्य गुणस्थानोंमें नहीं, परन्तु यह नियम नहीं है कि उन १६ प्रकृतियोंका बन्ध इस गुणस्थानमें

प्रत्येक जीवके होता ही है, क्योंकि ऐसा नियम स्वीकार करनेपर नरकायुका बन्ध प्रत्येक मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जीवके होनेका प्रसंग आयेगा, जो कर्मसिद्धान्तके विरुद्ध है। यतः कर्मसिद्धान्तमें इस गुणस्थानमें चारों आयुओंका बन्ध स्वीकार किया गया है। साथ ही यह भी कर्मसिद्धान्तमें माना गया है कि एक आयुका बन्ध होनेपर जीवके दूसरी आयुका बन्ध उसी भवमें नहीं होता। तथा प्रथमगुणस्थानवर्ती, देव और नारकीको नरक आयुका बन्ध कदापि नहीं होता है।

दूसरी बात यह है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवमें मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध तभी तक होता है जब तक वह व्यवहारमिथ्यादर्शन (अतत्त्वश्रद्धान) और व्यवहारमिथ्याज्ञान (अतत्त्वज्ञान) पूर्वक मिथ्याआचरण करता है और जीव यदि व्यवहारसम्यग्दर्शन (तत्त्व श्रद्धान) और व्यवहारसम्यग्ज्ञान (तत्त्वज्ञान) पूर्वक मिथ्याआचरणको छोड़कर अविरतिरूप या एकदेशअविरतिरूप या महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप आचरण करने लगता है तो उस समय उसके मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। यदि ऐसा न माना जाये तो समयसार गाथा २७५ के अनुसार अभव्य जीव तत्त्वश्रद्धानी और तत्त्वज्ञानी होकर जो अविरतिरूप या एकदेश अविरतिरूप या महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप आचरण करता है और उसके आधारपर क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना और प्रायोग्य लब्धियोंको भी प्राप्त कर लेता है, यह जो आगमका कथन है वह अयुक्त हो जायेगा। जिसका परिणाम यह होगा कि ऐसा अभव्य जीव नवम ग्रैवेयक तक जन्म लेकर स्वर्ग-सुखका उपभोग करता है, यह कथन भी अयुक्त हो जायेगा।

इससे यह निर्णीत होता है कि मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जीव मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती तो है, परन्तु जब तक मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञानपूर्वक मिथ्या आचरण करता रहता है तभीतक उसके मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध होता है और यदि वह जीव व्यवहारसम्यग्दर्शन और व्यवहारसम्यग्ज्ञानपूर्वक अविरतिरूप या एकदेश अविरतिरूप या महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप आचरण करने लगता है तो उस समय वह मिथ्यात्वकर्मका उदय रहते हुए भी मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता है, भले ही वह जीव अभव्य ही क्यों न हो, क्योंकि बन्धका आधार चरणानुयोगकी पद्धति है, करणानुयोगकी पद्धति नहीं।

तात्पर्य यह है कि भव्य और अभव्य दोनों ही प्रकारके जीव करणानुयोगको पद्धतिके अनुसार मिथ्यात्वकर्मके उदयमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्ती होते हुए भी चरणानुयोगकी पद्धतिके अनुसार जबतक व्यवहार मिथ्यादर्शन (अतत्त्व श्रद्धान) और व्यवहार मिथ्याज्ञान (अतत्त्वज्ञान) पूर्वक मिथ्या आचरण करते हैं तभीतक वे मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं और यदि वे व्यवहारसम्यग्दर्शन (तत्त्वश्रद्धान) और व्यवहारसम्यग्ज्ञान (तत्त्वज्ञान) पूर्वक अविरतिरूप या एकदेश अविरतिरूप या महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप आचरण करने लगते हैं तो वे उन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करते हैं, क्योंकि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि ऐसा न माननेपर अभव्य जीव स्वर्गसुखमें कारणभूत क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना और प्रायोग्य लब्धियोंकी प्राप्ति नहीं कर सकेगा। और न भव्य जीव उक्त चारों लब्धियोंकी प्राप्तिके पश्चात् भेदविज्ञानपूर्वक करण लब्धिको प्राप्त कर सकेगा। और इस तरह इससे मोक्षप्राप्तिकी प्रक्रिया ही समाप्त हो जायेगी। इस विवेचनपर उन महानुभावोंको ध्यान देना चाहिए, जो मिथ्यात्वकर्मके उदयमें मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध नियमसे मानते हैं।

निष्कर्ष यह है कि मिथ्यात्वकर्मके उदयमें मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध तभी होता है जब जीव व्यवहारमिथ्यादर्शन (अतत्त्व श्रद्धान) और व्यवहार मिथ्याज्ञान (अतत्त्वज्ञान) पूर्वक मिथ्या आचरण

करता है, अन्यथा नहीं। इतना उल्लेखयोग्य है कि मिथ्यात्वकर्मके उदयमें मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध न होते हुए भी जो उसका उदय रहता है उसका कारण पूर्वमें बद्ध मिथ्यात्वकर्मकी सत्ता है।

स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धकी व्यवस्था

अभी तक जितना विवेचन किया गया है उससे स्पष्ट है कि बन्धका मूल कारण नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाला जीवकी क्रियावतीशक्तिका [हलन-चलन-क्रियाव्यापाररूप योग ही है। यतः वह योग प्रथम गुण-स्थानसे लेकर त्रयोदश गुणस्थान तकके जीवोंमें प्रतिक्षण यथायोग्यरूपमें होता रहता है, अतः कर्मबन्ध भी उन सभी जीवोंमें प्रतिक्षण होता रहता है और वह प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके रूपमें दो प्रकार का होता है।

आगममें बतलाया गया है कि कर्मबन्ध प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके अलावा स्थितिबन्ध और अनुभाग-बन्धरूप भी होता है, अतः कर्मबन्धके प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके रूपमें चार भेद माने गये हैं।

कर्मबन्धका जीवके साथ यथायोग्य नियतकाल तक बना रहना स्थितिबन्ध है और कर्मोंमें जीवको फल देनेकी शक्तिका विकास होना अनुभागबन्ध है।

जिस प्रकार प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध ये दोनों योगके आधारपर होते हैं उसी प्रकार स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध ये दोनों कषायके आधारपर होते हैं। इनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है :—

मोहनीयकर्मके आगममें दो भेद कहे गये हैं—१. दर्शनमोहनीय और २. चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयकर्मके तीन भेद हैं १. मिथ्यात्व २. सम्प्रगमिथ्यात्व और ३. सम्यक्त्वप्रकृति। चारित्रमोहनीयकर्मके दो भेद हैं—१. कषायवेदनीय २. अकषायवेदनीय। कषाय-वेदनीयकर्मके मूलतः चार भेद—१. क्रोध २. मान ३. माया ४. लोभ। ये चारों अन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनके रूपमें चार-चार प्रकारके हैं। तथा इनके उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे कर्मबन्धके कारणभूत एवं जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमनस्वरूप कषायभाव होते हैं तथा वे यदि क्रोध या मानरूप हों तो उन्हें द्वेष कहते हैं और यदि माया या लोभरूप हों तो उन्हें राग कहते हैं। इस प्रकार कर्मोंके स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके कारण यथायोग्य नोकर्मोंकी सहायतापूर्वक होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन राग और द्वेषरूप कषाय-भाव ही हैं।

आगममें अकषायवेदनीय-चारित्रमोहनीयकर्मके जो हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसक वेद ये नौ भेद कहे गये हैं उन्हें राग और द्वेषरूप कषायभावोंके सहायक कर्म जानना चाहिए।

कर्मबन्धकी प्रक्रिया

मिथ्यात्वकर्मके उदयमें मिथ्यादृष्टिनामधारी प्रथमगुणस्थानवर्ती जीवकी भाववतीशक्तिके यथायोग्य नोकर्मोंके सहायकसे व्यवहारमिथ्यादर्शन और व्यवहारमिथ्याज्ञानरूप परिणमन होते हैं व उनके होनेपर यथायोग्य नोकर्मोंके सहयोगसे ही उसकी क्रियावतीशक्तिका मिथ्या-आचरण (मिथ्याचारित्र) रूप परिणमन होता है, जो कर्मबन्धका कारण होता है। यतः वह मिथ्या आचरण अनन्तानुबन्धी कर्मके उदयमें होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमनस्वरूप राग व द्वेषरूप कषायभावोंसे प्रभावित रहता है, अतः उस आचरणके आधारपर कर्मोंके प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके साथ स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध भी होते हैं।

अर्थात् वह आचरण योगरूप होनेसे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण होता है व वह नियमसे जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन राग या द्वेषरूप कषायभावसे प्रभावित रहता है, इसलिए कर्मोंके स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका भी कारण होता है ।

इसी प्रकार वह आचरण यतः व्यवहारमिथ्यादर्शन और व्यवहारमिथ्याज्ञानपूर्वक होता है, उनके अभावमें नहीं होता और वह व्यवहारमिथ्यादर्शन व व्यवहारमिथ्याज्ञानपूर्वक नियमसे होता है, अतः उक्त बन्धोंमें मिथ्याआचरणके साथ व्यवहारमिथ्यादर्शन और व्यवहारमिथ्याज्ञान भी परम्परया कारण होते हैं तथा मिथ्याआचरण साक्षात् कारण होता है ।

पहले बतलाया जा चुका है कि कर्मबन्ध चरणानुयोगकी पद्धतिके अनुसार होता है, करणानुयोगकी पद्धतिके अनुसार नहीं । अतः मिथ्यात्वकर्मके उदयमें मिथ्यादृष्टिनामधारी प्रथमगुणस्थानवर्ती जीव यदि अनुकूल निमित्तोंका सहयोग मिलनेपर व्यवहारसम्यग्दर्शन और व्यवहारसम्यग्ज्ञानको प्राप्त कर ले तो उसका आचरण मिथ्यारूप न होकर अविरतिरूप या एकदेश अविरतिरूप या महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप ही होता है, जिससे वह जीव मिथ्यात्वकर्मका उदय रहते हुए भी मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता है ।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि मिथ्यारूप आचरण, अविरतिरूप आचरण, एकदेश-अविरतिरूप आचरण और महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप आचरण—ये चारों योगके समान जीवकी क्रियावतीशक्तिके ही परिणमन हैं । इनमें जो विशेषता है वह यह है कि मिथ्या-आचरण अनन्तानुबन्धी कर्मके उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन राग-द्वेषरूप कषायभावसे प्रभावित रहता है । अविरतिरूप आचरण अप्रत्याख्यानावरण कर्मके उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन राग-द्वेषरूप कषायभावसे प्रभावित रहता है । एकदेश अविरतिरूप आचरण प्रत्याख्यानावरणकर्मके उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन राग-द्वेषरूप कषायभावसे प्रभावित रहता है । और महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप आचरण संज्वलनकर्मके तीव्र उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन राग-द्वेषरूप कषायभावसे प्रभावित रहता है । फलतः उक्त चारों आचरण योगके समान जीवकी क्रियावतीशक्तिके नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाले हलन-चलन रूप क्रियाव्यापार रूप होनेसे कर्मोंके प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके कारण होते हैं व जीवको भाववतीशक्तिके नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाले राग-द्वेषरूप कषायभावसे प्रभावित होनेके कारण स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके भी कारण होते हैं । तात्पर्य यह है कि उक्त चारों प्रकारके आचरणोंमेंसे प्रत्येक आचरण उक्त चारों बन्धोंका कारण है । यहाँ यह अवश्य ज्ञातव्य है कि अनन्तानुबन्धीकर्मके उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे जीवकी क्रियावतीशक्तिके परिणमन स्वरूप जो आचरण होता है वह आसक्तिवश होनेवाला संकल्पी पाप है ।

अनन्तानुबन्धीकर्मका उदय प्रथम और द्वितीय इन दो गुणस्थानोंमें स्थित जीवोंके होता है । विशेषता यह है कि प्रथमगुणस्थानवर्ती जीवका यह आचरण दर्शनमोहनीयकर्मकी मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयमें यथायोग्य नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन स्वरूप व्यवहारमिथ्यादर्शन और व्यवहारमिथ्याज्ञानपूर्वक होता है । अतः उसके आधारपर वह प्रथमगुणस्थानवर्ती जीव मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध करता है । यतः द्वितीयगुणस्थानवर्ती जीवका वह आचरण व्यवहारमिथ्यादर्शन और व्यवहारमिथ्याज्ञानपूर्वक नहीं होता, क्योंकि द्वितीय गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम विद्यमान रहनेके कारण मिथ्यात्वकर्मके उदयका अभाव रहता है, अतः वह द्वितीयगुणस्थानवर्ती जीव मिथ्यात्व आदि १६ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता है और क्योंकि उस जीवमें अनन्तानुबन्धीकर्मके उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे क्रियावतीशक्ति-

के परिणमन स्वरूप संकल्पी पापरूप आचरण होता ही रहता है। अतः उस आचरणके आधार पर वह जीव अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ आदि २५ प्रकृतियोंका बन्ध अवश्य करता है।

तृतीय और चतुर्थ गुणस्थानोंमें स्थित जीवोंमें नियमसे अप्रत्याख्यानावरणकर्मका उदय रहता है, अतः उस उदयमें उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीव निमित्तोंके सहयोगसे अपनी क्रियावतीशक्तिके परिणमन स्वरूप जो आचरण करते हैं वह अशक्तिवश होनेवाला आरम्भो पाप है व उसीका नाम अविरति है।

वह अविरति तृतीयगुणस्थानवर्ती जीवमें दर्शनमोहनीयकर्मकी सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन स्वरूप जो सम्यग्मिथ्यात्वरूप मिश्रभाव होता है उसके अनुसार ही कर्मबन्धका कारण होती है तथा चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवमें यतः दर्शनमोहनीयकर्मकी मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप तीन और अनन्तानुबन्धीकर्मकी क्रोध, मान, माया और लोभरूप चार इन सात प्रकृतियोंका उपशम, क्षयोपशम या क्षय विद्यमान रहता है, अतः वह अविरति उन कर्मोंके उदयकी अपेक्षाके बिना ही कर्मबन्धका कारण होती है। यही कारण है कि जहाँ तृतीयगुणस्थानवर्ती जीव ९८ प्रकृतियोंका बन्ध करता है वहाँ चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव तीर्थंकर, मनुष्यायु और देवायुके साथ उन ९८ प्रकृतियोंका बन्ध करता है। तृतीयगुणस्थानवर्ती जीवमें तीर्थंकर, मनुष्यायु और देवायु इन प्रकृतियोंका बन्ध इसलिए नहीं होता कि कर्मसिद्धान्तमें इस गुणस्थानमें उनके बन्धका निषेध किया गया है और चतुर्थगुणस्थानमें इसलिए उनका बन्ध होता है कि कर्मसिद्धान्तमें उसमें इन प्रकृतियोंके बन्धका विधान किया गया है। तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध चतुर्थ गुणस्थानमें इसलिए होता है कि उसका बन्ध कर्मसिद्धान्तके अनुसार निश्चय-सम्यग्दृष्टि जीवके ही होता है।

पंचम गुणस्थानवर्ती जीवमें अप्रत्याख्यानावरणकर्मके क्षयोपशमके साथ प्रत्याख्यानावरणकर्मका उदय रहता है, अतः वहाँ उस उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे होनेवाली जीवकी क्रियावतीशक्तिकी परिणतिस्वरूप एकदेश अविरति ही बन्धका कारण होता है।

षष्ठ गुणस्थानवर्ती जीवमें अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण दोनों कर्मोंके क्षयोपशमके साथ संज्वलन कषायका तीव्रोदय रहता है। अतः उस उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे जीवकी क्रियावतीशक्तिका प्रमादरूप परिणाम ही बन्धका कारण होता है।

सप्तम गुणस्थानसे लेकर दशम गुणस्थान तकके जीवोंमें संज्वलनकषायका उत्तरोत्तर मन्द, मन्दतर और मन्दतमरूपसे उदय रहता है और उस उदयमें नोकर्मोंके सहयोगसे अव्यक्तरूपमें जीवकी क्रियावतीशक्तिका जो परिणाम होता है वही वहाँ बन्धका कारण होता है।

इस प्रकार प्रथम गुणस्थानसे लेकरके षष्ठ गुणस्थानतक होनेवाला यथायोग्य मिथ्यात्वरूप, अविरतिरूप, एकदेश अविरतिरूप और महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप जीवकी क्रियावतीशक्तिका जो व्यक्तरूपमें परिणमन होता है वह परिणमन कर्मोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभागरूप चारों बन्धोंका कारण होता है। तथा सप्तम गुणस्थानसे लेकर दशम गुणस्थानतकके जीवोंमें जीवकी क्रियावतीशक्तिका जो अव्यक्तरूपमें परिणमन होता है वह भी कर्मोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग इन चारों प्रकारके बन्धोंका कारण होता है क्योंकि ये सभी परिणाम यथायोग्य उस-उस कषायके उदयमें होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन राग-द्वेषरूप कषायभावसे प्रभावित रहते हैं। ११वें, १२वें और १३वें गुणस्थानोंमें जीवकी क्रियावतीशक्तिका योगरूप

परिणमन ही मात्र प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण होता है । यतः १४वें गुणस्थानमें योगका सर्वथा अभाव रहता है, अतः वहाँ उस जीवमें कर्मबन्धका भी सर्वथा अभाव रहता है ।

इसके अतिरिक्त प्रथम गुणस्थानसे लेकर षष्ठ गुणस्थानतकके जीवोंमें व्यक्तरूपमें और सप्तम गुणस्थानसे लेकर दशम गुणस्थानतकके जीवोंमें अव्यक्तरूपमें जीवकी क्रियावतीशक्तिका जो पुण्यकर्मरूप व्यापार होता रहता है वह भी यथायोग्य उस-उस कषायके उदयमें होनेवाले जीवकी भाववतीशक्तिके परिणमन राग या द्वेषरूप कषायभावसे प्रभावित होनेसे जीवकी क्रियावतीशक्तिका परिणाम है व उसके आधारपर भी उन जीवोंमें कर्मोंका प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभागरूप चारों प्रकारका बन्ध होता है ।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस प्रकार व्यवहारमिथ्यादर्शन और व्यवहारमिथ्याज्ञानको कर्मबन्धका परम्परया कारण माना गया है उस प्रकार व्यवहारसम्यग्दर्शन और व्यवहारसम्यग्ज्ञानको कर्मबन्धका साक्षात् या परम्परया कारण नहीं माना जा सकता है, क्योंकि व्यवहारसम्यग्दर्शन और व्यवहारसम्यग्ज्ञान कर्मबन्धके कारण न होकर उसके अभावके ही कारण होते हैं । अतएव चतुर्थ गुणस्थानमें मात्र अविरति ही कर्मबन्धका कारण होती है व पंचम गुणस्थानमें मात्र एकदेश अविरति ही कर्मबन्धका कारण होती है तथा षष्ठ गुणस्थानमें मात्र महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूपता ही कर्मबन्धका कारण होती है ।

निष्कर्ष :

प्रथमगुणस्थानवर्ती जीव इसलिए अज्ञानी है कि उसके मिथ्यात्वकर्मका उदय रहता है और तृतीय गुणस्थानवर्ती जीव इसलिए अज्ञानी है कि उसके सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उदय रहता है । यद्यपि द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीवमें दर्शनमोहनीयकर्मकी प्रकृतियोंका उपशम रहता है, परन्तु वह जीव अनन्तानुबन्धी कर्मके उदयमें आसक्तिवश संकल्पीपाप भी करता रहता है । इसलिए उसे ज्ञानी नहीं कहा जा सकता है, उसे भी आगममें अज्ञानी ही कहा गया है । समयसार गाथा ७२ की आत्मख्यातिटीकामें स्पष्ट लिखा है कि जो जीव भेदज्ञानी होकर भी आसक्तियोंमें प्रवृत्त रहता है उसे भेदविज्ञानी नहीं कहा जा सकता है और यही कारण है कि जीवको निश्चयसम्यग्दृष्टि बननेके लिए दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम या क्षयके साथ अनन्तानुबन्धीकर्मके उपशम या क्षयको भी कारण माना गया है । फलतः चतुर्थगुणस्थानमें जीवको होनेवाले कर्मबन्धमें मात्र अविरति ही कारण होती है, पंचमगुणस्थानमें जीवको होनेवाले कर्मबन्धमें मात्र एकदेश अविरति ही कारण होती है और षष्ठ गुणस्थानमें जीवको होनेवाले कर्मबन्धमें मात्र महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूपता ही बन्धका कारण होती है, क्योंकि जबतक जीव अज्ञानधारामें वर्तमान रहता है तबतक ही उस जीवके कर्मबन्धमें व्यवहारमिथ्यादर्शन और व्यवहारमिथ्याज्ञानको कारण माना गया है और जब जीव ज्ञानी हो जाता है अर्थात् निश्चयसम्यग्दृष्टि हो जाता है तो केवल अविरतिरूप या एकदेश अविरतिरूप या महाव्रतोंमें प्रवृत्तिरूप कर्मधारा ही जीवके कर्मबन्धमें कारण होती है । इसी तरह सप्तम गुणस्थानसे लेकर दशम गुणस्थानतकके जीवोंके जो कर्मबन्ध होता है वह भी कर्मधारके आधारपर ही होता है, इसलिए सप्तम गुणस्थानसे दशम गुणस्थानतक जीवोंमें ज्ञानधारके साथ कर्मबन्धमें कारणभूत कर्मधारका सद्भाव स्वीकार किया गया है । इस विवेचनसे यह भी स्पष्ट है कि प्रथम गुणस्थानसे तृतीय गुणस्थानतकके जीवोंमें अज्ञानधारापूर्वक कर्मधारा बन्धकी कारण होती है व चतुर्थ गुणस्थानसे षष्ठ गुणस्थानतकके जीवोंमें व्यक्तरूपसे व सप्तम गुणस्थानसे लेकर दशम गुणस्थानतकके जीवोंमें अव्यक्तरूपसे मात्र क्रियाधारा ही यथायोग्य राग-द्वेषरूप कषाय भावोंसे प्रभावित होती हुई कर्मबन्धका कारण होती है । इत्यलम् ।

